वैदिक ऋषिकाएँ

(१)

वैदिक ऋषिका देवसम्राज्ञी शची

शची देवराज इन्द्रकी पत्नी हैं। ये भी भगवती आद्याशक्तिकी एक कला मानी गयी हैं। ये स्वयंवरकी अधिष्ठात्री देवी हैं। प्राचीन कालमें जब कहीं स्वयंवर होता था तो पहले शचीका आवाहन और विधिवत् पूजन कर लिया जाता था, जिससे स्वयंवर-सभामें कोई विघ्न या बाधा पड़नेकी सम्भावना अथवा उत्पात, कलह और किसी प्रकारके उपद्रव आदिकी आशंका नहीं रहती थी। ऋग्वेदमें कई ऐसे सूक्त मिलते हैं, जो शचीद्वारा प्रकाशमें लाये गये बतलाये जाते हैं। वे सपत्नियोंपर प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये अनुष्ठानोपयोगी मन्त्र हैं। शचीदेवी पतिव्रता स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे भोग-विलासमय स्वर्गकी रानी होकर भी सतीत्वकी साधनामें संलग्न रहती हैं। उनके मनपर पतिके विलासी जीवनका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी ओर देखती हैं और अपनेको सती-साध्वी देवियोंके पुण्य-पथपर अग्रसर करती रहती हैं। उनके सर्वस्व देवराज इन्द्र ही हैं। इन्द्रके सिवा दूसरे किसी पुरुषको, भले ही वह इन्द्रसे भी ऊँचे पदपर क्यों न प्रतिष्ठित हो, अपने लिये कभी आदर नहीं देतीं।

रत्न किसी अयोग्य स्थानमें पड़ा हो तो भी रत्न ही है। इससे उसके महत्त्वमें कमी नहीं आती। शचीदेवीका जन्म दानवकुलमें हुआ था, तथापि वे अपने त्याग-तपस्या और संयम आदि सद्गुणोंसे देवताओंकी भी वन्दनीया हो गयीं। शचीके पिताका नाम था पुलोमा। वह दानव-कुलका सम्मानित वीर था। उसीके नामपर शचीको 'पौलोमी' और 'पुलोमजा' भी कहते हैं। बाल्यकालमें शचीने भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये घोर तपस्या की थी और उन्हींके वरदानसे वे देवराजकी प्रियतमा पत्नी तथा स्वर्गलोककी रानी हुईं। शचीका जीवन बड़े सुखसे बीतने लगा। इसी प्रकार कई युग बीत गये। देहधारी प्राणी स्वर्गके देवता हों या मर्त्यलोकके मनुष्य, उनके जीवनमें कभी-कभी दुःखका अवसर भी उपस्थित हो ही जाता है। यह दुःख प्राणियोंके लिये एक चेतावनी होता है। सुखी जीवन प्रमादी हो जाता है। दुःखी प्राणी ही सजग रहते हैं। उन्हें अपनी भूलों और त्रुटियोंको सुधारनेका अवसर मिलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि दुःखमें ही भगवान् याद आते हैं और दुःखमें ही धर्मका महत्त्व समझमें आता है। शचीके जीवनमें भी एक समय ऐसा आया, जबकि उन्हें सतीत्वकी अग्निपरीक्षा देनी पड़ी तथा गर्वके साथ कहना पड़ता है कि शचीने अपने गौरवके अनुरूप ही कार्य करके धैर्य और साहसपूर्वक प्राणोंसे भी अधिक प्रिय सतीत्वकी रक्षा की।

देवराज इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र भगवद्भक्त वृत्रासुरका वध कर दिया। इस अन्यायके कारण इन्द्रकी सर्वत्र निन्दा हुई। उनपर भयानक ब्रह्महत्याका आक्रमण हुआ। उससे बचनेके लिये वे मानसरोवरके जलमें जाकर छिप गये। स्वर्गको इन्द्रसे शून्य देखकर देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। तीनों लोकोंमें अराजकता फैल गयी। अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। वर्षा बंद हो गयी। नदियाँ सूख गयीं। पृथ्वी धन-वैभवसे रहित हो गयी। इन सारी बातोंपर विचार करके देवताओंने भूतलसे राजा नहुषको बुलाया और उन्हें इन्द्रके पदपर स्थापित कर दिया। नहुष धर्मात्मा तो थे ही, सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इन्द्रपदके अधिकारी भी हो गये थे, किंतु धर्मात्मा होनेपर भी नहुष इन्द्रपद पानेके बाद अपनेको राजमदसे मुक्त न रख सके। वे विषयभोगोंमें आसक्त हो गये। उन्होंने शचीके रूप-लावण्य आदि गुणोंकी चर्चा सुनी तो उनकी प्राप्तिके लिये भी वे चिन्तित हो उठे। शचीको जब इसका पता लगा तो वे गुरु बृहस्पतिकी शरणमें गयीं। बृहस्पतिने उनको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटी! विश्वास रखो, मैं सनातनधर्मका त्याग करके तुम्हें नहुषके हाथमें कभी नहीं पड़ने दूँगा। जो शरणमें आये हुए आर्तजनोंकी रक्षा नहीं करता, वह एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। तुम चिन्ता न करो। किसी भी अवस्थामें मैं तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा।'

नहुषने सुना, इन्द्राणी बृहस्पतिके शरणमें गयी है। बृहस्पतिने उसे अपने घरमें छिपा रखा है। तब उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने देवताओंसे कहा—'यदि बृहस्पति

मेरे प्रतिकूल आचरण करेगा तो मैं उसे मार डालूँगा।' देवताओंने नहुषको शान्त करते हुए कहा—'प्रभो! आप अपने क्रोधको शान्त कीजिये। धर्मशास्त्रोंमें परस्त्रीगमनकी निन्दा की गयी है। इन्द्रकी पत्नी शची सदासे ही साध्वी जीवन बिताती आ रही हैं। आप इस समय तीनों लोकोंके स्वामी और धर्मके उपदेशक एवं पालक हैं, यदि आप-जैसे महापुरुष भी अधर्मका आचरण करेंगे तो निश्चय ही प्रजाका नाश हो जायगा। स्वामीको सदा ही साधु-पुरुषोंके आचरणका अनुकरण करना चाहिये। आप पुण्यके ही बलसे इन्द्रपदको प्राप्त हुए हैं। पापसे सम्पत्तिकी हानि और पुण्यसे उसकी वृद्धि होती है; इसलिये आप पापबुद्धि छोड़ दीजिये।' जब कामान्ध नहुषपर इस उपदेशका कुछ भी असर न हुआ, तब देवता तथा महर्षि बहुत डर गये, फिर यह कहकर कि 'हम इन्द्राणीको समझा-बुझाकर आपके पास ले आनेकी चेष्टा करेंगे', बृहस्पतिजीके घर चले गये।

देवताओंके मुखसे यह दुःखद समाचार सुनकर बृहस्पतिने कहा—'शची पतिव्रता है और मेरी शरणमें आयी है।' यों कहकर बृहस्पतिने देवताओंके साथ कुछ परामर्श किया और फिर इन्द्राणीको साथ लेकर सब-के-सब नहुषके पास पहुँच गये। इन्द्राणी काँपने लगीं और लजाते-लजाते बोलीं—'देवेश्वर! मैं आपसे वरदान प्राप्त करना चाहती हूँ। आप कुछ कालतक प्रतीक्षा करें। जबतक कि मैं इस बातका निर्णय नहीं कर लेती हूँ कि 'इन्द्र जीवित हैं या नहीं'—इस विषयमें मेरे मनमें संशय बना हुआ है; अतः इसका निर्णय होते ही मैं आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगी। तबतकके लिये आप मुझे क्षमा करें।' इन्द्राणीके इस प्रकार कहनेपर नहुष प्रसन्न हो गया और बोला—'अच्छा, जाओ।' इस प्रकार उसके विदा करनेपर देवी शची अन्यत्र जाती हुई सम्पूर्ण देवताओंसे बोलीं—'अब तुम लोग वास्तविक इन्द्रको यहाँ ले आनेके लिये पूर्ण उद्योग करो।' तब देवताओंने जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति की। भगवान्‌ने कहा—'इन्द्र अश्वमेध-यज्ञके द्वारा जगदम्बाका आराधना करें तो वे पापसे मुक्त हो सकते हैं। इन्द्राणीको भी भगवतीकी आराधनामें लग जाना चाहिये।' यह सुनकर बृहस्पति और देवता उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र छिपे थे; फिर उन लोगोंने उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करवाया। तदनन्तर इन्द्रने अपनी ब्रह्महत्याको वृक्ष, नदी, पर्वत, स्त्री और पृथ्वीको बाँट दिया। इधर इन्द्राणीने भी बृहस्पतिजीसे भुवनेश्वरीदेवीके मन्त्रकी दीक्षा लेकर उनकी आराधना आरम्भ कीं। वे सम्पूर्ण भोगोंका परित्याग करके तपस्विनी बन गयीं और बड़ी भक्तिसे भगवतीकी पूजा करने लगीं।

कुछ कालके बाद देवीने संतुष्ट होकर इन्द्राणीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। शचीने कहा—'माताजी! मैं पतिदेवका दर्शन चाहती हूँ तथा नहुषकी ओरसे जो भय मुझे प्राप्त हुआ है, उससे भी मुक्ति चाहती हूँ।' देवीने कहा—'तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी। तुम इस दूतीके साथ मानसरोवर पर्वतपर जाओ। वहाँ तुम्हें इन्द्रका दर्शन होगा।' देवीकी आज्ञासे दूतीने शचीको तुरंत ही उनके पतिके पास पहुँचा दिया। पतिको देखते ही शचीके शरीरमें नूतन प्राण आ गये। जिनके दर्शनके लिये कितने ही वर्षोंसे आँखें तरस रही थीं, उन्हें सामने पाकर शचीके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने नहुषकी पाप-वासना और अपने संकटका सारा वृत्तान्त अपने पतिको सुनाया। सुनकर इन्द्रने कहा—'देवि! पतिव्रता नारी अपने धर्मसे ही सदा सुरक्षित रहती है। जो दूसरोंके बलपर अपने सतीत्वकी रक्षा करती हैं, वे उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता नहीं हैं। तुम भगवतीका स्मरण करके उचित उपायसे आत्मरक्षा करो।' यों कहकर इन्द्रने शचीको एक गुप्त एवं रहस्यपूर्ण युक्ति सुझायी तथा इन्द्रलोक भेज दिया। नहुषने शचीको देखकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'इन्द्राणी! तुम्हारा स्वागत है। तुमने अपने वचनका पालन किया है। अब तुम्हें मुझसे लज्जा नहीं करनी चाहिये। मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ। मेरी सेवा स्वीकार करो।' शची बोलीं—'राजन्! मेरे मनमें एक अभिलाषा है, आप उसे पूर्ण करें। मैं चाहती हूँ कि आप ऐसी सवारीपर चढ़कर मेरे पास आयें जो अबतक किसीके उपयोगमें न आयी हो।'

नहुषने कहा—'इन्द्राणी! मैं तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा। मेरी शक्ति किसीसे कम नहीं है। मैं ऋषियोंकी पीठपर बैठकर आऊँगा—सप्तर्षि मेरे वाहन होंगे।' यों कहकर नहुषने सप्तर्षियोंको बुलाया और उनकी पीठपर बैठपर इन्द्राणीके भवनकी ओर प्रस्थान

किया। उस समय वह इतना मदान्ध हो रहा था कि महर्षि अगस्त्यको कोड़ोंसे पीटने लगा। इस प्रकार नहुषको मर्यादाका अतिक्रमण करते देख क्षमाशील महर्षिके मनमें भी क्रोधकी आग जल उठी। उन्होंने नहुषको शाप देते हुए कहा—'अरे अधर्मगामी! तू सर्पकी योनिमें चला जा।' महर्षिके शाप देते ही नहुष सर्पका रूप धारण करके स्वर्गसे नीचे जा गिरा। इस तरह शचीने अपने सतीत्वकी रक्षा करके अपने ऊपर आये हुए संकटपर विजय प्राप्त की और पतिको भी पुनः स्वर्गके सिंहासनपर प्रतिष्ठित किया।

(२)

वाचक्नवी गार्गी

वैदिक साहित्य-जगत्में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गीका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनके पिताका नाम वचक्नु था, उनकी पुत्री होनेके कारण इनका नाम 'वाचक्नवी' पड़ गया; किंतु मूल नाम क्या था, इसका वर्णन नहीं मिलता। गर्ग-गोत्रमें उत्पन्न होनेके कारण लोग इन्हें 'गार्गी' कहते थे और इनका 'गार्गी' नाम ही जनसाधारणमें अधिक प्रचलित था। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में इनके शास्त्रार्थका प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

विदेहराज जनकने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें कुरुसे पाञ्चाल देशतकके विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हुए थे। राजा जनक बड़े विद्या-व्यसनी तथा सत्संग-प्रेमी थे। उन्हें शास्त्रके गूढ तत्त्वोंका विवेचन और परमार्थ-चर्चा दोनों अधिक प्रिय थे। इसीलिये उनके मनमें यह जिज्ञासा हुई कि यहाँ आये हुए विद्वान् ब्राह्मणोंमें सबसे बढ़कर तात्त्विक विवेचन करनेवाला कौन है? इस परीक्षाके लिये उन्होंने अपनी गोशालामें एक हजार गौएँ रखवा कर प्रत्येकके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण जड़वा दिया। यह व्यवस्था करके राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोगोंमें जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हो, वह इन सभी गौओंको ले जाय।' राजाकी यह घोषणा सुनकर किसी भी ब्राह्मणमें यह साहस नहीं हुआ कि उन गौओंको ले जाय। सबको अपने ब्रह्मवेत्तापनमें संदेह हुआ। सब सोचने लगे कि 'यदि हम गौएँ ले जानेके लिये आगे बढ़ते हैं तो ये सभी ब्राह्मण हमें अभिमानी समझेंगे और शास्त्रार्थ करने लगेंगे, उस समय हम इन सबको जीत सकेंगे या नहीं; इसका क्या निश्चय है!' यह विचार करते हुए सब चुप ही रहे। सबको मौन देखकर याज्ञवल्क्यजीने सामवेदका अध्ययन करनेवाले अपने ब्रह्मचारीसे कहा—'सोम्य! तू इन सब गौओंको हाँक ले चल।' ब्रह्मचारीने वैसा ही किया।

यह देख ब्राह्मणलोग क्षुब्ध हो उठे। विदेहराजका होता अश्वल याज्ञवल्क्यसे पूछ बैठा—'क्यों? तुम्हीं हम सबमें बढ़कर ब्रह्मवेत्ता हो?' याज्ञवल्क्यने नम्रतासे कहा—'नहीं, ब्रह्मवेत्ताओंको तो हम नमस्कार करते हैं, हमें केवल गौओंकी आवश्यकता है, अतः ले जाते हैं।' फिर क्या था, शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। यज्ञका प्रत्येक सदस्य याज्ञवल्क्यसे प्रश्न करने लगा। याज्ञवल्क्य इससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने धैर्यपूर्वक सबके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः देना आरम्भ किया। अश्वलने चुन-चुनकर कितने ही प्रश्न किये, किंतु उचित उत्तर पा जानेके कारण अन्ततः वे चुप होकर बैठ गये। तब जरत्कारु गोत्रमें उत्पन्न आर्तभागने प्रश्न किया, उनको यथार्थ उत्तर मिल गया; अतः वे भी मौन हो गये। तदनन्तर क्रमशः आर्तभाग, भुज्यु, चाक्रायण उषस्त और कौषीतकेय कहोल प्रश्न करके चुप बैठ गये। इसके बाद वाचक्नवी गार्गी बोलीं—'भगवन्! यह जो कुछ पार्थिव पदार्थ है, वह सब जलसे ओतप्रोत है, किंतु जल किसमें ओतप्रोत है?' याज्ञवल्क्यने कहा—'जल वायुमें ओतप्रोत है'।

इस प्रकार क्रमशः वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, गन्धर्वलोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक, देवलोक, इन्द्रलोक और प्रजापतिलोकके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होनेपर जब गार्गीने पूछा कि 'ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है'? तब याज्ञवल्क्यने कहा—'यह तो अतिप्रश्न है। गार्गी! यह उत्तरकी सीमा है, अब इसके आगे प्रश्न नहीं हो सकता। अब तू प्रश्न न कर, नहीं तो तेरा मस्तक गिर जायगा।' वाचक्नवी विदुषी थीं, वे याज्ञवल्क्यके अभिप्रायको समझकर चुप हो गयीं। तदनन्तर और कई विद्वानोंने प्रश्नोत्तर किये। उसके बाद गार्गीने दो प्रश्न और किये। इन प्रश्नोंके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने अक्षरतत्त्वका, जिसे परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, भाँति-भाँतिसे निरूपण किया। गार्गी याज्ञवल्क्यका लोहा मान गयीं। उन्होंने निर्णय कर दिया कि 'इस सभामें याज्ञवल्क्यसे बढ़कर

ब्रह्मवेत्ता कोई नहीं है, इनको कोई पराजित नहीं कर सकता है। ब्राह्मणो! आपलोग इसीको बहुत समझें कि याज्ञवल्क्यको नमस्कार करनेमात्रसे आपका छुटकारा हो जा रहा है। इन्हें पराजित करनेका स्वप्न देखना व्यर्थ है।'

गार्गीके प्रश्नोंको पढ़कर उनके गम्भीर अध्ययनका पता लगता है; इतनेपर भी उनके मनमें अपने पक्षको अनुचितरूपसे सिद्ध करनेका दुराग्रह नहीं था। वे विद्वत्तापूर्ण उत्तर पाकर संतुष्ट हो गयीं और दूसरेकी विद्वत्ताकी उन्होंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। गार्गी भारतवर्षकी स्त्रियोंमें रत्न थीं। आज भी उनकी-जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियोंपर इस देशको गर्व है।

(३)

ब्रह्मवादिनी ममता

ममता दीर्घतमा ऋषिकी माता थीं। ये महान् विदुषी और ब्रह्मज्ञानसम्पन्न थीं। अग्निके उद्देश्यसे किया हुआ इनका स्तुतिपाठ ऋग्वेदसंहिताके प्रथम मण्डलके दशम सूक्तकी ऋचामें मिलता है। उसका भावार्थ यह है—

'हे दीप्तिमान्! असंख्य चोटियोंवाले और देवताओंको बुलानेवाले अग्नि! दूसरे अग्निकी सहायतासे प्रकाशित होकर आप इस 'मानव-स्तोत्र' को सुनिये। श्रोतागण ममताके सदृश ही अग्निके उद्देश्यसे इस मनोहर स्तोत्रको पवित्र घृतकी भाँति अर्पित करते हैं।'

(४)

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा

'प्रज्वलित अग्निदेव तेजका विस्तार करके द्युलोक-तकको प्रकाशित करते हैं। वे प्रातः एवं सायं (हवनके समय) अत्यन्त सुशोभित होते हैं। देवार्चनमें निमग्न परमात्माके उपासक पुरुष तथा विद्वान् अतिथियोंका हविष्यान्नसे स्वागत करनेवाली स्त्रियाँ उस अग्निदेवके समान ही सुशोभित हैं।'

'अग्निदेव! आप प्रकाशमान होनेसे जलके स्वामी हैं। जिस यजमानके पास आप जाते हैं, वह समस्त पशु आदि धन प्राप्त करता है। हम आपके योग्य आतिथ्य-सूचक हवि प्रस्तुत करके आपके समीप (हवनकुण्डके पास) रखती हैं। जो स्त्री श्रद्धा-विश्वासपूर्वक आपको प्रणाम करती है, वह ऐश्वर्यकी स्वामिनी होती है। उसका अन्तःकरण पवित्र होता है। उसका मन स्थिर होता है। उसकी इन्द्रियाँ वशमें रहती हैं।'

'अग्निदेव! महासौभाग्यकी प्राप्तिके लिये आप बलवान् बनें—प्रज्वलित हों! आपके द्वारा प्राप्त धन परोपकारहेतु उत्तम हो! हम स्त्रियोंके दाम्पत्यभावको सुदृढ़ करें! हम स्त्रियोंके शत्रु—दुष्कर्म, कुचेष्टा, लोभादिपर आपका आक्रमण हो।'

'हे दीप्तिमान् देव! मैं आपके प्रकाशकी वन्दना करती हूँ। आप यज्ञके लिये प्रज्वलित हों। हे प्रकाशराशि प्रभो! भक्तवृन्द आपका आह्वान करते हैं। यज्ञक्षेत्रमें आप सभी देवताओंको प्रसन्न करें।'

'यज्ञमें हव्यवाहक अग्निदेवकी रक्षा करो! इनकी सेवा करो और देवताओंको हव्य पहुँचानेके लिये इनका वरण करो।'

ऋग्वेदके पाँचवें मण्डलके द्वितीय अनुवाकमें पठित अट्ठाईसवें सूक्तमें वर्णित छः ऋचाओंका यह भावार्थ है। अत्रि महर्षिके वंशमें उत्पन्न विदुषी विश्ववारा इन मन्त्रोंकी द्रष्टा ऋषिका हैं। अपनी तपस्यासे उन्होंने इस ऋषिपदको प्राप्त किया था।

इन मन्त्रोंमें बताया गया है कि स्त्रियोंको सावधानीपूर्वक अतिथि-सत्कार करना चाहिये। यज्ञके लिये हविष्य तथा सामग्रियोंको प्रस्तुत करके अपने अग्निहोत्री पतिके समीप पहुँचाना चाहिये। अग्निदेवकी वन्दना करनी चाहिये। इनकी स्तुति करनी चाहिये और पतिके प्राजापत्य अग्निकी सावधानीपूर्वक रक्षा भी पत्नीको ही करनी चाहिये। [पहले प्रत्येक द्विजातिके गृहमें हवनकुण्डके अग्निकी सावधानीसे रक्षा होती थी। प्रत्येक पुरुषके हवनकुण्ड पृथक् होते थे। इनकी अग्निदेवका बुझना भयंकर अमङ्गल माना जाता था] इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रोंसे जान पड़ता है कि ये अग्निकी ही उपासिका थीं।

(५)

ब्रह्मवादिनी अपाला

ब्रह्मवादिनी अपाला अत्रिमुनिके वंशमें उत्पन्न हुई थीं। कहते हैं कि अपालाको कुष्ठरोग हो गया था, इससे उनके पतिने उन्हें घरसे निकाल दिया था। वे अपने पीहरमें बहुत दुःखी रहती थीं। उन्होंने कुष्ठरोगसे मुक्त होनेके लिये

इन्द्रकी आराधना की। एक बार इन्द्रको अपने घर बुलाकर सोमपान कराया तथा उन्हें प्रसन्न किया। इन्द्रदेवने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया। उनके वरदानसे अपालाके पिताके सिरके उड़े हुए केश फिर आ गये, उनके खेत हरे-भरे हो गये और अपालाका कुष्ठरोग मिट गया। वे ब्रह्मवादिनी थीं। ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके ९१ वें सूक्तकी १ से ७ तककी ऋचाएँ इन्हींकी संकलित हैं।

(६)

ब्रह्मवादिनी घोषा

घोषा काक्षीवान् ऋषिकी कन्या थीं। बचपनमें इन्हें कुष्ठरोग हो गया था, इसीसे योग्य वयमें इनका विवाह नहीं हो पाया। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे जब इनका रोग नष्ट हुआ, तब इनका विवाह हुआ। ये बहुत प्रसिद्ध विदुषी और ब्रह्मवादिनी थीं। इन्होंने स्वयं ब्रह्मचारिणीके रूपमें ही ब्रह्मचारिणी कन्याके समस्त कर्तव्योंका उल्लेख दो सूक्तोंमें किया है। इन्होंने कहा है—'हे अश्विनीकुमारो! आपके अनुग्रहसे आज घोषा परम भाग्यवती हुई है। आपके आशीर्वादसे घोषाके स्वामीके भलेके लिये आकाशसे प्रचुर वर्षा हो, जिससे खेत लहलहा उठें। आपकी कृपादृष्टि घोषाके भावी पतिको शत्रुकी हिंसासे रक्षा करे। युवा एवं सुन्दर पतिको पाकर घोषाका यौवन चिरकाल अक्षुण्ण बना रहे।'

'हे अश्विनीकुमारो! पिता जैसे संतानको शिक्षा देते हैं, वैसे ही आप भी मुझे सत्-शिक्षा दें। मैं बुद्धिहीन हूँ। आपका आशीर्वाद मुझे दुर्गतिसे बचाये। आपके आशीर्वादसे मेरे पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र आदि सुप्रतिष्ठित होकर जीवनयापन करें। पतिगृहमें मैं पतिकी प्रियपात्री बनूँ।' ऋग्वेदके दशम मण्डलके ३९ से ४१ वें सूक्ततक इस आख्यानका संकेत प्राप्त होता है।

(७)

ब्रह्मवादिनी सूर्या

ऋग्वेदके दशम मण्डलके ८५ वें सूक्तकी ४७ ऋचाएँ इनकी हैं। यह सूक्त विवाह-सम्बन्धी है। आरम्भकी ऋचाओंमें चन्द्रमाके साथ सूर्यकन्या सूर्याके विवाहका वर्णन है। हिंदू वेद-शास्त्रोंमें जितने आख्यान हैं, उन सबके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों अर्थ होते हैं। वेदकी ऋचाओंके भी तीन अर्थ हैं, परंतु वे केवल आध्यात्मिक अर्थरूप ही हैं; इतिहास नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। चन्द्रमाके साथ सूर्याके विवाहका आध्यात्मिक अर्थ भी है और उसका ऐतिहासिक तथ्य भी है। जहाँ चन्द्र एवं सूर्यको नक्षत्ररूपमें ग्रहण किया गया है, वहाँ आलंकारिक भाषामें आध्यात्मिक वर्णन है और जहाँ उन्हें अधिष्ठात्री देवताके रूपमें लिया गया है, वहाँ प्रत्यक्ष ही वैसा व्यवहार हुआ है।

सूर्या जब विदा होकर पतिके साथ चली, तब उसके बैठनेका रथ मनके वेगके समान था। रथपर सुन्दर चँदोवा तना था और दो सफेद बैल जुते थे। सूर्याको दहेजमें पिताने गौ, स्वर्ण, वस्त्र आदि पदार्थ दिये थे। सूर्याके बड़े ही सुन्दर उपदेश हैं—

'हे बहू! इस पति-गृहमें ऐसी वस्तुओंकी वृद्धि हो, जो प्रजाको और साथ ही तुम्हें भी प्रिय हो। इस घरमें गृह-स्वामिनी बननेके लिये तू जाग्रत् हो। इस पतिके साथ अपने शरीरका संसर्ग कर और जानने-पहचाननेयोग्य परमात्माको ध्यानमें रखते हुए दोनों स्त्री-पुरुष वृद्धावस्थातक मिलते तथा बातचीत करते रहो।' 'हे बहू! तू मैले कपड़ोंको फेंक दे और वेद पढ़नेवाले पुरुषोंको दान कर। गंदी रहने, गंदे कपड़े पहनने, प्रतिदिन स्नान न करनेसे तथा आलस्यमें रहनेसे भाँति-भाँतिके रोग हो जाते हैं, जिससे पत्नीकी मलिनता पतिमें भी पहुँच जाती है। इसलिये पतिका कल्याण चाहनेवाली स्त्रीको स्वच्छ रहना उचित है। मैलेपनसे होनेवाले रोगसे शरीर कुरूप हो जाता है, शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाती है। जो पति ऐसी पत्नीके वस्त्रका उपयोग करता है, उसका शरीर भी शोभाहीन और रोगी हो जाता है।'

'हे बहू! सौभाग्यके लिये ही मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूँ। पतिरूप मेरे साथ ही तू बूढ़ी होना।'

'हे परमात्मा! आप इस वधूको सुपुत्रवती तथा सौभाग्यवती बनायें। इसके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न करें और ग्यारहवें पति हों।' 'हे वधू! तू अपने अच्छे व्यवहारसे श्वशुर-सासकी, ननद और देवरोंकी सम्राज्ञी हो अर्थात् अपने सुन्दर बर्तावसे—सेवासे सबको अपने वशमें कर ले'—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(ऋक्० १०। ८५। ४६)

(८)

वैदिक ऋषिका ब्रह्मवादिनी वाक्

वाक् अम्भृण ऋषिकी कन्या थीं। ये प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनी थीं और इन्होंने भगवती देवीके साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थीं। ऋग्वेदसंहिताके दशम मण्डलके १२५ वें सूक्तमें 'देवी-सूक्त' के नामसे जो आठ मन्त्र हैं, वे इन्हींके रचे हुए हैं। चण्डीपाठके साथ इन आठ मन्त्रोंके पाठका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। इन मन्त्रोंमें स्पष्टतया अद्वैतवादका सिद्धान्त प्रतिपादित है। मन्त्रोंका अर्थ इस प्रकार है—

'मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणोंके रूपमें विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुणको, इन्द्र और अग्निको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ।'

'मैं ही शत्रुओंके नाशक आकाशचारी देवता सोमको, त्वष्टा प्रजापतिको तथा पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो हविष्यसे सम्पन्न होकर देवताओंको उत्तम हविष्यकी प्राप्ति कराता है तथा उन्हें सोमरसके द्वारा तृप्त करता है, उस यजमानके लिये मैं ही उत्तम यज्ञका फल और धन प्रदान करती हूँ।'

'मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपासकोंको धनकी प्राप्ति करानेवाली, साक्षात्कार करनेयोग्य परब्रह्मको अपनेसे अभिन्नरूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपञ्चरूपसे अनेक भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता—जहाँ कहीं जो कुछ भी करते हैं, सब मेरे लिये ही करते हैं।'

'जो अन्न खाता है, वह मेरी ही शक्तिसे खाता है; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे उक्त सब कर्म करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही हीन दशाको प्राप्त हो जाते हैं। हे बहुश्रुत! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ।' सुनो—

'मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंके द्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस-जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ। उसीको सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञानसम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ।'

'मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करके रुद्रके धनुषको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागतजनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ।'

'मैं ही इस जगत्के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठानस्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्र (सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान परमात्मा)-में तथा जल (बुद्धिकी व्यापक वृत्तियों)-में मेरे कारण (कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म)-की स्थिति है। अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ।'

'मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रचना आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंमें परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ।'

भाषा और धर्म-भेदसे भेद नहीं

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥

(अथर्व० १२। १। ४५)

अनेक प्रकारसे विभिन्न भाषा बोलनेवाले और विविध धर्मोंको माननेवाले लोगोंको एक परिवारके तुल्य धारण करनेवाली पृथिवी, निश्चल एवं न बिदकनेवाली (अर्थात् शान्त-स्थिर) गायकी तरह मुझे ऐश्वर्यकी सहस्रों धाराएँ प्रदान करें।